हिन्दू-समाज और समाजवाद

परमहंस स्वामी रामतीर्थ



प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान,
सारनाथ, वाराणसी



दो शब्द

स्वामी राम जीती-जागती वेदान्तमूर्ति थे। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है--सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म--श्रुति के इसी अटल, अनन्त सत्य के आधार पर उन्होंने अपना सारा जोवन ढाला था। वेदान्त उनके लिए केवल मानसिक मनोविनोद की सामग्री न था। उन्होंने विधिवत् उसका अध्ययन, मनन, चिन्तन, निधिध्यासन, आचरण और साक्षात् किया था। अपने उसी अनुभव के बल पर उन्होंने बार बार कहा है--कोई समय हो, जिस मनुष्य ने, जिस समाज ने, जिस राष्ट्र ने इस परम सत्य की उपेक्षा की, तिरस्कार या खण्डन किया, वह मनुष्य, वह समाज, वह राष्ट्र सत्य-रूप शिव के अकाट्य त्रिशूल के प्रहार से बच नहीं सकता, उसे ठोकरें खानी ही पड़ेंगी। हमारा जो आचरण, जो भावना, जो विचार आत्मा की अनन्तता और एकता का विरोध करता है, वह हमें नीचे गिराता है, जो उसके अनुकूल होता है, वह हमें ऊपर उठाता है। एक शब्द में श्रुति अनादि और शाश्वत है और स्मृति देशकालानुसार परिवर्तनीय है।

स्वामी राम ने तत्कालीन हिन्दू समाज की परिस्थिति पर इसी दृष्टि से विचार किया है। निस्संदेह समय की प्रगति के साथ हमारे समाज में भी बहुत कुछ परिवर्तन हुए हैं, फिर भी वर्तमान काल में हमें अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को ठीक-ठीक समझने में स्वामी राम के विचारों से बड़ी सहायता मिल सकती है। इसी आशा से यह प्रकाशन पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

[दीपावली २०१५]

रामेश्वरसहायसिंह
रामतीर्थ प्रतिष्ठान, सारनाथ, वाराणसी

तीर्थ-रेणु

आप एकान्त से एकान्त गुफा में कोई पाप करें, आप यह देखकर चकित होंगे कि आपके पैरों तले की भूमि ही आपके विरुद्ध साक्षी देने की तैयारी कर रही है। प्रकृति को धोखा नहीं दिया जा सकता।

*

जो अपने साथी से घृणा करता है, वह उसी मनुष्य के समान हत्यारा है, जिसने सचमुच किसी का गला घोंटा हो।

*

जो कोई आपके सामने आवे, ईश्वर के रूप में उसका स्वागत करो, पर ऐसा करते समय अपने को भी अधम मत समझो। यदि आज आप जेलखाने में हैं, तो कल आप वैभवशाली भी हो सकते हैं।

*

दूसरों के प्रति आपका क्या कर्त्तव्य है? यदि कोई घायल हो, तो उसके घावों पर उसी प्रकार मरहम-पट्टी करो, जैसे आप अपने शरीर की सेवा-सुश्रूषा करते हैं।

*

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी--वे सब जिनके पुट्ठे, हड्डियाँ और मस्तिष्क मेरी प्यारी इष्ट देवी भारत-भूमि के अन्न और नमक से बने हैं, वे सब मेरे भाई हैं, नहीं, नहीं, मेरा अपना आप हैं।

ॐ

हिन्दू-समाज

स्वामी राम का जन्म और लालन-पालन हिन्दू-समाज में हुआ था। अन्त में जिस संन्यास आश्रम को उन्होंने ग्रहण किया था, वह भी हिन्दू-समाज का एक आवश्यक अंग है। एकान्त के उत्कट प्रेमी होने पर भी वे भली भाँति जानते थे कि समाज की कितनी आवश्यकता होती है। वे उसकी अवहेलना कर ही कैसे सकते थे! किन्तु उसकी परि-सीमा में उन्होंने सदैव कर्ण रेखा का ही अनुगमन किया। वे कहते हैं—

हमारी सुरक्षा और निर्भयता हमारे उस कौशल पर निर्भर करती है जिससे हम कर्ण रेखा को पकड़े रह सकते हैं। पूर्ण एकान्त अव्यवहार्य है और समाज घातक। हमको अपना शिर एक में रखना होगा और अपना हाथ दूसरे में। अपना स्वातंत्र्य बेशक स्थिर रखो, पर तुम समाज के प्रति सहानुभूतिशून्य नहीं हो सकते।

सचमुच राम समाज के ऊपर उठ गये थे किन्तु उन्होंने उसके लिए काम किया है। उन्होंने देखा कि हिन्दू-समाज-संगठन में अनेक दोष घुस गये हैं। समाज का ढाँचा काष्ठवत् कड़ा नहीं, पत्थर के समान कठोर हो गया है। वे समाज की इन बुराइयों को दूर करना चाहते थे। वे सुधार के पक्ष में थे, न उसके विघटन के। उन्होंने ऋषियों-द्वारा निर्धारित समाज-संगठन के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। किन्तु जाति-व्यवस्था की वर्तमान अवस्था की जो आलोचना की है, वह आँखें खोलने वाली है। वे कहते हैं:—

देखिये, तुम्हारे अपने शरीर में ही श्रम-विभाजन है। आँखें केवल देखती हैं, वे सुनती नहीं। कान केवल सुनते हैं, वे नेत्र का काम नहीं

करते । हाथ पैर का काम नहीं करते, पैरों को अपना काम स्वयं करना होता है और हाथ वही काम करते हैं, जो इनके लिए नियत हुआ है। यदि हम आँख से सुनना चाहें, और नाक से चलना चाहें अथवा हाथ से सूंघना चाहें और कान से खाना चाहें तो क्या ऐसी क्रियायें वांछनीय हो सकती हैं ? नहीं, इस प्रकार तो हम पुनः 'प्रोटोप्लाज्म' के विकास-पथ की प्रारम्भिक अवस्था में पहुँच जायेंगे, उस जीवधारी का रूप धारण करेंगे, जिसमें पेट के अतिरिक्त और कोई इन्द्रिय होती ही नहीं, जहाँ एकमात्र पेट ही आँख, कान, नाक, पैर आदि की क्रियायें सम्पन्न करता है। हम ऐसा कदापि नहीं चाह सकते । श्रमविभाग न्यायपूर्ण है, और आवश्यक भी । और इसी श्रमविभाग सिद्धान्त के आधार पर एक समय भारतवर्ष में जाति-व्यवस्था का नियमन और स्थापन हुआ था। वह व्यवस्था केवल श्रम-विभाजन मात्र थी और उससे अधिक कुछ भी नहीं। एक मनुष्य ने पुरोहित के काम अपने ऊपर लिये और दूसरे मनुष्य ने योद्धा के कर्त्तव्य पालन करना उचित समझा, क्योंकि यह दूसरा मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक युद्धप्रिय और शारीरिक शक्तिसम्पन्न था। अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण होने, शत्रुओं से लड़ने और उन्हें परास्त करने में दक्ष होने के कारण वह पुरोहित और उपदेशक के सात्विक कार्यों को करने में अधिक रुचि नहीं रखता था। यह केवल श्रम विभाग था। समाज में कुछ ऐसे लोग भी थे जो कृषि, वाणिज्य आदि साधारण व्यवसायों के अधिक उपयुक्त थे। इनके अतिरिक्त समाज में कुछ लोग विशेषकर आदिवासी भी थे, जिन्होंने सभ्यता और संस्कृति में प्रवेश ही नहीं किया था, जिनकी शिक्षा-दीक्षा नहीं के बराबर थी, जो अपना शैशव और बालपन खेल-कूद ही में में बिता देते थे। स्वभावतः ये लोग पुरोहित के महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकते थे, वे क्षत्रिय वीरों के काम करने के भी योग्य नहीं थे, क्योंकि युद्ध-कार्यों के लिए आवश्यक सैनिक शिक्षा और नियंत्रण भी उन्हें प्राप्त

नहीं था। वे व्यापार-वाणिज्य आदि के लिए भी अयोग्य थे। व्यापार-वाणिज्य में भी कुछ कौशल, कुछ ज्ञान अपेक्षित होता है। ऐसी स्थिति में वे एक साधारण श्रमिक के काम करने को तैयार रहते थे, जैसे झाड़ लगाना, सड़कों आदि पर काम करना। इस प्रकार श्रमविभाग के आधार पर भारतवर्ष में समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए चार वर्णों की प्रतिष्ठा हुई थी—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह सब होते हुए भी यदि किसी व्यक्ति को अपने वर्ण के काम के अतिरिक्त और कोई काम पसन्द हों तो उसे उनको करने की कोई मनाही या रोक-टोक विषयक कोई कठोर नियम न थे।

भारतवर्ष में मनुस्मृति नाम की एक पुस्तक है, जिसमें हिन्दू-समाज-संचालन के सारे नियमोपनियम लिखे हैं। उस पुस्तक से उन दिनों सभी वर्णों को अपने कर्त्तव्य-पालन में सहायता मिलती थी। प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक जाति को अपना-अपना काम चलाने के लिए उसमें विभिन्न कर्त्तव्य, आदेश, नियम और प्रस्ताव दिये गये हैं। ब्राह्मणों के लिए उसमें सभी प्रकार के विधि-विधान हैं, क्षत्रियों के लिए उसमें सभी कर्त्तव्य नियत किये गये हैं। इस प्रकार उस समय यह पुस्तक सभी वर्णों के लिए बड़ी उपादेय सिद्ध हुई।

परन्तु वर्तमान काल में जाति-व्यवस्था की दशा बिलकुल लौट-पौट गयी है। वह किसी प्रकार भी संतोषप्रद नहीं कही जा सकती। उसमें शास्त्रीय आदर्शों की अनुकूलता नाममात्र को भी शेष नहीं रह गयी है। अतः स्वामी राम ने उसके विषय में कहा है—

धीरे-धीरे कालान्तर में इस पस्तक का गलत अर्थ लगाया जाने लगा, उसकी भ्रामक व्याख्या होने लगी। धीरे-धीरे सारी वर्ण व्यवस्था एकदम लौट-पौट गयी, जो बात गौण थी, वह मुख्य हो गयी, जो मुख्य थी, वह गौण हो गयी। यह सारी वर्ण व्यवस्था और उसका एकमात्र आधार श्रम का विभाग एकदम निर्जीव, चित्रवत् रूढ़िगत हो

गया। उन्होंने उसे बन्धनों में जकड़ दिया। शब्द केवल शब्द मात्र रह गये। उनके अन्तरंग भावार्थ की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फलतः राष्ट्र का जीवन ही समाप्त हो गया। हर एक नियम, हर एक प्रथा यंत्रवत् कृत्रिम हो गयी। मनुस्मृति समाज की सेवा करने के स्थान में एक अत्याचारी शासक के रूप में प्रकट हुई।

जातियाँ ठीक और अच्छी थीं। वर्ण विभाग में कोई दोष नहीं था। परन्तु भूल, भयंकर भूल जो भारतवर्ष में हुई और सच पूछो तो जो भयंकर भूल वर्तमान भारतवर्ष के पतन का कारण सिद्ध हुई, वह यह थी कि इस वर्ण व्यवस्था का वर्गीकरण बिल्कुल जड़, निर्जीव और अपरिवर्तनीय बना दिया गया और उसके फलस्वरूप परस्पर सहानुभूति-शून्य जाति-उपजातियों की ऐसी बाढ़ आयी, जो भारतवर्ष के लिए घोरतम अभिशाप सिद्ध हुई।

मनुस्मृति के तत्कालीन अस्थायी नियमोपनियम और संयम, जो तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रखकर बनाये गये थे, जो उस समय का अस्थायी लोकाचार मात्र था, उस अल्पकालीन व्यवस्था ने धीरे-धीरे श्रुति का, उस अनश्वर, शाश्वत ज्ञान का स्थान हड़प कर लिया, जो उपनिषदों और वेदान्त ग्रन्थों में समझाया गया है। जो आदर और प्रशस्ति श्रुति को मिलनी चाहिए थी, वह सारी की सारी स्मृतियों पर चढ़ायी जाने लगी। लोग मानो नियमोपनियमों के लिए ही जीवित रहने लगे। नियम थे तो मनुष्य के लिए किन्तु बन गया मनुष्य नियमों के लिए। पुरातन स्मृतियों का प्रामाण्य अपनी सीमा अतिक्रमण कर गया, यहाँ तक कि उसके सामने आत्मा, जीती जागती चैतन्य आत्मा के स्पष्ट आदेश भी ठुकराये जाने लगे। भारतवासी—ब्राह्मण और क्षत्रिय रह गये व्यवहार्यतः केवल हाड़-मांस के पुतले! वास्तविक आत्मा, अनादि, अनन्त सत्य सभी बातों, सभी कामों में पूर्णतः विस्मरण होने लगा।

अपने पू[illegible] ऋषियों-मुनियों [illegible] समय-समय पर भारतवर्ष में हिन्दू-धर्म को पुनर्जीवित करने तथा उसकी बुराइयों के उन्मूलन के लिए प्रकट होते रहे हैं, स्वामी राम ने वर्तमान काल में अपने देश की सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए वेदान्त का आश्रय लिया। उन्होंने कहा—

बस, इसी व्यावहारिक ज्ञान की कमी, जिसने स्मृति को श्रुति से ऊपर उठा दिया, सभी प्रकार की सामाजिक बुराइयों के लिए उत्तरदायी है, जैसे शारीरिक परिश्रम से घृणा, वर्णों का उत्तरोत्तर जाति-उपजातियों में बँटते जाना, विदेश-यात्रा-निषेध, बाल विवाह, और महिला-समाज का सर्वव्यापक अज्ञान। सामाजिक दुराचार और भ्रष्टाचार का सामना करना कोई हँसी-खेल नहीं है। 'बर्क' ने ठीक ही कहा है—"सुधार की बातें, जब तक हम से दूर-दूर रहती हैं, तभी तक बड़ी भली मालूम होती हैं"। रीति-रिवाज के बन्धनों को तोड़ना सचमुच एक कड़ा काम है। सुधार को व्यवहार में लाते ही समाज और सुधारकों में घोर वैमनस्य पैदा होने लगता है। वे एक दूसरे पर कटु से कटु लांछन लगाते हैं और निन्दनीय से निन्दनीय छिद्रान्वेषण प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार सुधार और एकता के स्थान में एक नई फूट, दुर्भावना और वैमनस्य का जन्म होता है। प्रश्न यह है कि क्या इस पार्थक्य से बचने के लिए हमें समाज को अपनी उसी ऊटपटाँग गति-विधि पर छोड़ देना चाहिए, हमें केवल अपने ही कार्यों पर ध्यान देकर उनकी सफलताओं में सन्तुष्ट रहना चाहिए। हम केवल अपनी मुक्ति पर ध्यान दें और सोचें कि समाज स्वयं अपना बेड़ा पार लगायेगा—ओह ! यदि सचमुच ऐसी बात सम्भव होती। डूबने वाला समाज आपको अछूता नहीं छोड़ सकता। तुम्हें तो समाज के साथ ही गिरना और समाज के साथ ही उठना होगा। ऐसा विश्वास करना कि कोई व्यक्ति किसी अपूर्ण समाज में रहकर अपने आपको सर्वथा पूर्ण

बना सकता है, सम्भव नहीं मालूम होता, ठीक वैसे जैसे हमारा हाथ हमारे शरीर से कटकर किसी प्रकार भी सबल और शक्ति-सम्पन्न नहीं हो सकता।

चिरकाल से भारतवर्ष में यह सर्वथा वेदान्त-विरोधी विचार हमने अपनी छाती से लगा रखा है, जिसके फलस्वरूप आज समाज के अस्थि-पंजर ही ढीले पड़ गये हैं। ऐ भारत के आशारूप नवयुवक! भारत का भविष्य तुम्हारा भविष्य है और तुम उसके लिए उत्तरदायी हो। केवल कायरों पर ही बहुमत का जादू चलता है, वे अन्धविश्वास से ऊपर नहीं उठ सकते। किन्तु जिनके हृदय में अन्तरात्मा की जीती-जागती लौ प्रकाशित हो गयी है, वही अन्त में जनता के हृदयों और विचारों पर शासन करते हैं। बी. ए., एम. ए. की डिगरी तुम विश्व-विद्यालयों से प्राप्त करते हो किन्तु तुम्हें शूरवीर बनना है या कायर--यह तुम स्वयं चुनोगे—बोलो, तुम अपने लिए क्या पसन्द करते हो! दासानुदास या जीवन-सम्राट्। शक्ति-सम्पन्न और पवित्र जीवन ही इतिहास की धारा को लौटा-पौटा करता है। न्यूटन ने शक्ति की यही परिभाषा की है कि जिसके द्वारा किसी पदार्थ की गति में परिवर्तन हो सके। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीतती जाती हैं और रीति-रिवाज और अन्धविश्वास के रूढ़िवाद की धारा में पनपने वाले पारस्परिक अप्राकृतिक विरोधभाव और उससे बढ़कर पारस्परिक उदासीनता निरन्तर अपनी गति से आगे बढ़ती जाती है। ओ सुसंस्कृत और चरित्रवान नवयुवक, अब यह तुम्हारा काम है, उठो और समाज के इस अनावश्यक और सवर्था व्यर्थ रूढ़िवाद को अपनी जीति-जागती शक्ति से बदल डालो। चिरकालिक तमोगुण पर विजय पाओ, गति को वांछनीय दिशा की ओर मोड़ो और उसमें आवश्यक वेग उत्पन्न करो। बस, इस प्रकार ही तुम जनता को उचित दिशा में गतिशील कर सकोगे। उठो, काम में जुट जाओ।

पुराणप्रिय हिन्दू अपना मुँह सदैव भूतकाल की ओर रखते हैं, वे प्राचीन रूढ़ियों को छोड़ना नहीं चाहते, और अधीर सुधारक, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने से एकदम पाश्चात्यीकरण के पक्ष में हैं, वे भारत को इंग्लैण्ड के सांचे में ढालना चाहते हैं। इन दोनों के प्रति राम का संदेश था--

भूत को वर्तमान की अनुकूलता के साँचे में ढालो और इस प्रकार अपने पवित्र एवं सशक्त वर्तमान को भविष्य की दौड़ में निर्भयता-पूर्वक आगे बढ़ाओ। अपने पूर्वजों की पैत्रिक सम्पत्ति के बिना हमारा काम नहीं चल सकता, जो समाज उसकी अवहेला करता है, वह वाह्य आक्रमण के समक्ष अवश्य नष्ट हो जायगा। पर जो उसी को लिये बैठा रहता है, जिसमें वर्तमान को समझने की शक्ति नहीं, वह भीतर से अपने आप ही नष्ट होगा।

जो लोग निम्न श्रेणी की जातियों को नगण्य समझते हैं, उनसे राम का कहना है, पददलित जातियाँ तो राष्ट्रीय वृक्ष की जड़ें हैं और जिन्हें हम ऊँची जातियाँ कहते हैं, वे उसके फल कहे जा सकते हैं। यदि जड़ों की अवहेलना करोगे, तो फिर कुछ भी हाथ न लगेगा।

राष्ट्र का गौरव धनवानों से भले ही कुछ चमक जाये, पर सत्य का प्रसार तो गरीब आदमियों के द्वारा हो सकता है। अतः जड़ों को सींचना चाहिए।

गरीबों और धनहीनों की सेवा करो, धनवान से छेड़-छाड़ करने की आवश्यकता नहीं।

देखो न, शून्य भी किसी भी अंक का मूल्य दस गुना बढ़ा देता है, यदि वह उसके दाहिनी ओर रख दिया जाय। यदि निम्न श्रेणी के लोग ही तुम्हारे विचारों का अनुसरण करते हैं, तो उससे तुम्हारे समाज को शक्ति प्राप्त होगी।

वास्तव में प्रत्येक बच्चे को विकास की प्रत्येक दशा में होकर बढ़ना होता है, जैसे शारीरिक दृष्टि से वह क्रमशः शिशु, बालक, कुमार, युवा आदि होता है, उसी प्रकार नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर भी शैशव, बचपन आदि आवश्यक, .नहीं अनिवार्य सोपान हैं। जिन्हें हम पातकी कहते हैं, वे सचमुच नैतिक शिशु हैं। पर क्या बच्चे में अपना एक सौंदर्य नहीं होता ? तुम भी तो कभी विश्वविद्यालय की प्रथम कक्षा में भरती हुए थे।

अमेरिका में भाषण करते हुए राम ने वर्ण व्यवस्था के विपरीत भाव-परिवर्तन पर बड़ा दुःख प्रकट किया। उन्होंने कहा--

वास्तव में सभी कर्म श्रेष्ठ हैं, परिश्रममात्र पवित्र है। परन्तु वर्ण व्यवस्था के भाव-विपर्यय से कुछ व्यवसायों को श्रेष्ठ और कुछ को हेच माना जाने लगा। जो बच्चे बचपन में शिक्षा प्राप्त नहीं करते, उन्हें खेलकूद के बदले युवावस्था में हाथ-पैरों की कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। मानो प्रायश्चित रूप से ही वे कड़ा परिश्रम करके अपने माथे का पसीना वहाते हैं। ऐसी अवस्था में हम या तुम किस मुँह से उनके परिश्रम को हेच कह सकते हैं। क्या शूद्र का काम घृणा के योग्य है ? क्या वह काम भी समाज के लिए उतना ही आवश्यक नहीं है, जितना किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का काम। सच तो यह है कि यही गरीब, जिन्हें शूद्र कहते हैं, यही समाज के पैर, आधार और स्तम्भ हैं। वह उदण्ड समाज जो इन निम्न श्रेणी की जातियों के विकास में बाधा और अड़चनें डालता है, जो समाज इन गरीब, असहाय शूद्रों की शिक्षा से मुँह मोड़ता और दुर्व्यवहार करता है, वह मानो स्वयं अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारता है, एक न एक दिन वह अवश्य भूमिसात् हो जायगा।

वर्ण व्यवस्था और जाति-भेद के मार्ग से हम कहाँ से कहाँ पहुँचे और वह किस प्रकार राष्ट्रोन्नति में बाधक हो रहा है, उसके विषय में स्वामी राम ने कहा है—

मूल में तो श्रम का विभाजन और प्रेम की रक्षा करना वर्णभेद का लक्ष्य था। किन्तु वर्तमान जाति-प्रथा में ये सब चीजें उलट-पलट दी गयी हैं, गाड़ी घोड़े के आगे जोती गयी है। होना तो चाहिए था श्रम का विभाग और चित्त में प्रेम, एकता का सामंजस्य। पर अभाग्य और नासमझी से चित्त की एकता और प्रेम तो दूर होता जा रहा है और बाह्य कर्त्तव्यों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की जा रही है।

क्या तुम यह नहीं देख पाते कि जाति-प्रथा द्वारा जनित भेदभाव की भारतवर्ष में कितनी अति हो गयी और वह विकास-शक्तियों की यथोचित उन्नति में कितना बाधक हो रहा है। मनुष्य और पशु में एक ही बड़ा भेद है। कुत्ते के पिल्ले को अपनी पूर्णता के लिए जिन चीजों की आवश्यकता होती है, वे सब की सब उसे वंश-परम्परा के नियम से स्वतः प्राप्त हो जाती हैं पर मानव-शिशु को स्वतः कुछ नहीं मिलता, यद्यपि वह देशकालानुसार शिक्षा के द्वारा सारे संसार पर शासन कर सकता है। हिन्दुओं ने बड़ी भूल यह की है कि देशकालानुसार शिक्षा के गुण से मनष्य को वंचित कर दिया है और केवल वंश-परम्परागत शक्तियों को विकसित और उन्नत करने के लिए इस प्रकार बाध्य किया है जैसे उनकी उन्नति में शिक्षा का कोई स्थान न हो। फलस्वरूप नर और नारी पशुओं और वृक्षों की श्रेणी में आ गये हैं। ऐसा मालूम होता है कि अब हिन्दू आत्मा की अनन्त शक्तियों में विश्वास नहीं करते। वे यह नहीं सोच सकते कि शूद्र शिक्षा के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है। वे शूद्र के लड़के को शूद्र और वैश्य के पुत्र को वैश्य ही बनाये रखेंगे, क्योंकि उनके कथनानुसार अंजीर के बीज से अंजीर का पेड़ होता है और कुत्ता केवल कुत्ते को ही जन सकता है। यह उनका तर्क है। और यह बात वे वर्तमान काल के उन भयंकर तथ्यों के सामने पुष्ट करते रहते हैं जो सरासर उनके तर्क को झूठा सिद्ध करते हैं। वर्तमान काल के ब्राह्मण पूर्व काल के उत्कृष्ट दार्शनिकों, पूज्य ऋषि-

महर्षियों एवं उद्भट तत्वज्ञानियों की ही सन्तान तो हैं, फिर आज शिक्षा के अभाव में कैसे मूढ़ हो रहे हैं। इसके विरुद्ध कुछ काल पूर्व के अपेक्षाकृत असभ्य एवं अनुन्नत लोग जैसे अंग्रेज व अन्य यूरोपियन शिक्षा के प्रभाव तथा कठोर परिश्रम के बल से शारीरिक, मानसिक और राजनैतिक शक्तियों के उच्च शिखर तक पहुँच गये हैं। सच तो यह है कि ईश्वर किसी व्यक्ति, समाज या जाति का आदर नहीं करता। जो ठीक श्रम करता है, वह विजयश्री से विभूषित होता है। जो शिक्षा और ज्ञान लाभ करता है, वही मैदान जीतता और गौरव पाता है।

भारतवर्ष की दरिद्रता का एक बड़ा कारण स्वामी राम ने जनसंख्या की वृद्धि ठहराया है। जनसंख्या के प्रश्न पर वे कहते हैं—

वैज्ञानिक 'हक्सले' किसी देश, समाज या जाति की तुलना प्रकृति के स्वच्छन्द जंगल के बीच स्थित उपवन या बाग से करता है। सामाजिक विकास का क्रम, जो उसकी दृष्टि से नैतिक क्रम भी कहा जा सकता है, उद्यान विद्या से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। अब यह उक्त क्रम प्रकृति के स्वच्छन्द सृष्टि-क्रम से सर्वथा विपरीत है। प्रकृति के स्वच्छन्द क्रम की विशेषता यह है कि उसमें जीवन के लिए निरन्तर प्रचण्ड संघर्ष मचा रहता है। उद्यान-विद्या और नैतिक क्रम की विशेषता यह है कि वे इस झगड़े-टण्टे की जड़ काटने की चेष्टा करते हैं, उन कारणों को दूर करते हैं, जिनसे ऐसे झगड़े उत्पन्न होते हैं। 'हेनरी ड्रमन्ड' ने इन दोनों क्रमों की एकता सिद्ध करने का भारी प्रयास किया है किन्तु विशाल शब्दाडम्बर के बाद भी वह 'हक्सले' और 'डारवन' के निष्कर्षों से एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सका। क्योंकि वह इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि यदि माली बाग में अपने आप उत्पन्न होने वाले खर-पात को निरन्तर उखाड़ता न जाय और उसकी बाढ़ को रोकने के लिए विधिवत् निराई आदि न करता रहे तो थोड़े दिनों में प्रकृति का वही स्वच्छन्द सृष्टि-क्रम बाग में फिर अपना सिक्का जमा लेता है और

पारस्परिक संघर्ष और भीषण संहार होने लगता है। एक शब्द में, फिर बाग में शान्ति और अभ्युदय का विधान काम नहीं कर सकता। ठीक इसी प्रकार किसी भी जाति में जब उसके संभव विस्तार की चरम सीमा आने लगती है और उस समय यदि उसकी अतिरिक्त जनसंख्या को हटाने का कोई उपाय नहीं किया जाता तो भीषण संघर्ष अवश्यम्भावी है, वहाँ शान्ति नहीं ठहर सकती। नैतिक सदाचार का दम घुटने लगता है और जिन बातों को लोग ईश्वरीय आदेश के रूप में मान्यता देते हैं, वे भी तिरस्कृत हो जाती हैं। ऐसी संकटमय परिस्थितियों में ही भ्रष्टाचार पनपता है और जातियों का पतन अनिवार्य हो जाता है। रोम, यूनान अथवा किसी भी अन्य देश के पतन और विनाश की जड़ में हम जनसंख्या की इसी समस्या को मुख्यता से देखते हैं। भारतवर्ष में यह भयानक स्थिति बहुत पहले प्रकट हो चुकी है और उस मूल कारण को दूर करने का हमने कोई प्रयास नहीं किया है। इस भूमण्डल में शायद ही कोई देश ऐसा हो जो भारत के समान दरिद्र हो और जो भारत के समान ही सघन हो। देश का कोई भी साधारण घर हमें राष्ट्र की अवस्था का दिग्दर्शन करा सकता है। एक तो आय के स्रोत बहुत ही कम और प्रति वर्ष खाने वालों की संख्या में अधिक वृद्धि इस पर भी व्यर्थ के रीति-रिवाजों के रूढ़िवाद की निर्दय दासता में फँस कर अनुचित व्यय की अनिवार्यता। एक पशुशाला में बँधनेवाले पशु भी ऐसी स्थिति में लड़-भिड़कर मर जायँगे, यदि वहाँ खाना तो दो-एक के लिए ही पर्याप्त हो और पशुओं की संख्या ही अत्यधिक। लड़ाई की जड़ को तो हाथ लगाना नहीं और फिर शान्ति का उपदेश देना सचमुच उपदेश की हँसी करना है। भारतवासी दिल से नम्र और शान्तिप्रिय हैं। उनका हृदय निस्संदेह सरल है, परन्तु परिस्थितिवश शारीरिक आवश्यकतायें उन्हें बाध्य करती हैं तो वे ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थपरता से कैसे बच सकते हैं। यदि जन-संख्या की समस्या हल नहीं होती, तो

राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक सहिष्णुता की बातें कपोल कल्पना ही सिद्ध होंगी। हमें इस पहेली को सुलझाना ही होगा अन्यथा हम नाश से नहीं बच सकते। सहानुभूति और स्वार्थ-त्याग प्राणि-शास्त्र के सिद्धान्तानुसार उस सामाजिक परिस्थिति में कभी नहीं पनप सकते, जहाँ आये दिन दुःख और दैन्य सामने खड़ा रहता हो। ऐ भारतवासी, ऐसी दयनीय निर्धनता के बीच प्रेम और सहानुभूति की आशा करना केवल दुराशामात्र है। भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि कोई भौतिक पिण्ड तभी तक अपनी भीतरी समता स्थिर रख सकता है, जब तक उसका प्रत्येक परमाणु अलग-अलग अन्य पड़ोसी परमाणुओं से एक समान दूरी पर स्थिर रहता है जिससे प्रत्येक परमाणु को अलग-अलग अपनी नियमबद्ध गति करने के लिए पर्याप्त स्थान मिलता रहे। अब भारत की जनता को देखिये। क्या उसका प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के संघर्ष में आये बिना अपनी सुचारु गति कर सकता है? क्या उन्हें स्वतंत्र, स्वाभाविक गतिविधि के लिए पर्याप्त स्थान मिला हुआ है? यदि एक खानेवाले के पीछे दस को भूखों मरना पड़ता है तो राष्ट्र को अपनी भीतरी समता सुरक्षित रखने के लिए तुरन्त उपाय करना चाहिए। अन्यथा उसे स्वच्छन्द प्रकृति की गोद में जाने के सिवा और कोई मार्ग नहीं हो सकता। जहाँ सीमा का अतिक्रमण हो जाता है, वहाँ महर्षि वशिष्ठ के अनुसार प्रकृति महामारी, दुर्भिक्ष, युद्ध, भूकम्प आदि से काम लेती है।

स्वामी राम ने इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए कुछ उपाय भी सुझाये हैं। उनका पहला प्रस्ताव है—देशान्तर-गमन। वे कहते हैं—

'भारतवर्ष से बाहर पैर रखना अपने आप को स्वर्ग से वंचित करना है'—इस अन्ध विश्वास से भारतवासियों को सदा के लिए नमस्कार कर लेना चाहिए और इस सत्य ज्ञान से सुसज्जित होकर जितने अधिक भारतवासी देश के बाहर रहने के लिए जा सकें, वे तुरन्त

अन्य देशों में बसने के लिए चले जायँ। विदेश-यात्रा में कोई रुकावट न होना चाहिए। भला, अपने आप को आजन्म कूपमण्डूक बनाने में आपको क्या आनन्द आता है ? क्या आप आँख खोलकर नहीं देख पाते कि आप अत्यन्त जनाकीर्ण होने के कारण इस सुन्दर भारत भूमि को एक दम-घोंटनेवाली काल कोठरी बना रहे हो।

उनका दूसरा प्रस्ताव था—अंधाधुँध, असामयिक और बेमेल विवाह तुरन्त बन्द कर दिये जायं। वे कहते हैं—

एक समय था, जब भारतवर्ष में आर्यों के लिए बहुसन्तान का प्राप्त करना सौभाग्य की बात मानी जाती थी। पर वे दिन बीत गये, वह युग बदल गया, परिस्थिति बिलकुल दूसरी हो गयी। आज जनसंख्या की अति होने के कारण वृहत् परिवार अभिशाप रूप हो रहे हैं। ऐ विचार हीन पुरुष ! जो आज भी उस बचपन के विचार से चिपटा हुआ है कि मृत्यु-अनन्तर उसकी स्वर्ग-प्राप्ति उसकी सन्तानों पर निर्भर करती है, जरा, अपनी आँख खोलकर देखे तो सही कि क्या वह वर्तमान भारत-वर्ष में मृत्यु के बहुत पहले बहुसन्तान के कारण अपने घर को यहीं नरक जैसा नहीं बना रहा है। यही तो वह तर्क हे जिसे युद्ध से विरत होने के लिए अर्जुन ने उठाया था—जब हमारे पुत्र और पौत्र आदि सभी युद्ध में मारे जायँगे, तब ऐसी विजय-श्री को लेकर क्या होगा ! और इस पर श्रीकृष्ण ने सन्तान के बल पर स्वर्ग में आनन्द-उपभोग करने की इच्छा रखने वालों से क्या कहा था, यह भगवद्गीता से स्पष्ट है। (अध्याय २, श्लोक ४२-४५)। इन श्लोकों के मनन से तुम लाभान्वित होगे और तुम उनमें निहित स्वातंत्र्य-भाव को हृदयंगन कर सकोगे। बस, अब हमको इस महाभयानक कल्पना को अपने देश से परे फेंकना चाहिए, जो हमें ऊपर अनेक शताब्दियों से बराबर आतंक जमाये हुए है। वह है क्या—विवाह करो, सन्तान उत्पन्न करो और अज्ञान की दासता में मर जाओ।

स्वामी राम का तीसरा प्रस्ताव था––शिक्षा-सुधार। वे कहते हैं––

शिक्षा का उद्देश्य तो यह होना चाहिए कि हम अपने देश के साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करने के योग्य बन जावें। समुचित शिक्षा के द्वारा लोगों को इस योग्य होना चाहिए कि वे भूमि को अधिक उर्वर बनावें, देश की खानों से अधिक खनिज निकालें और व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समुन्नति करें, उनका शरीर अधिक क्रियाशील हो, मस्तिष्क अधिक मौलिक हो, हृदय अधिक पवित्र हो, उनके उद्योग-धंधे अधिकाधिक विभिन्न हों और राष्ट्र अधिकतम एकता-सम्पन्न हो। अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों से लम्बे-चौड़े प्रमाण देने की योग्यता, शास्त्रों के वचनों को तोड़-मरोड़कर अपने अनुकूल आशय निकालना और दूसरे के मतों का व्यर्थ खण्डन-मण्डन करना, उन विषयों का अध्ययन करना जिनका हमारे व्यावहारिक जीवन में कोई उपयोग होने की आशा नहीं, किसी प्रकार भी शिक्षा नहीं कही जा सकती। उस ज्ञान के अर्जन में जीवन खपा देना, जिसे हम व्यवहार में नहीं लगा सकते, वास्तव में आध्यात्मिक अपच या मानसिक अजीर्ण ही कहा जा सकता है।

भारतवर्ष की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम कूड़ा-करकट को हेच समझते हैं, मृत पशुओं की हड्डियाँ छूने में झिझकते हैं, हमने अपने में एक प्रकार का ऐसा नासिका विज्ञान उत्पन्न किया है कि किसी प्रकार की गंदी चीज देखते ही नाक स्वतः सिकुड़ने लगती है। और ये वही छोटी-मोटी कहलानेवाली चीजें हैं जिनके सदुपयोग ने योरप और अन्य सभ्य देशों को बड़ा बनाया है। यह तो गंदे खाद का ही प्रताप है, जो हमारे उपवनों में सुन्दर-सुन्दर पुष्प खिलते हैं। काला कोयला और उससे उत्पन्न होनेवाला श्वासरोधक धुआँ ही वे चीजें हैं, जिनके सदुपयोग से योरप और अमेरिका के लौह कारखानों एवं अन्य निर्माण-गृहों में अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है।

हमारे राम का भी गौरव इस बात में सन्निहित है कि उन्होंने क्षुद्र और नगण्य बन्दरों से ऐसी अजेय सेना प्रस्तुत की थी।

अतः बस, तुम्हारे सामने इस समय सबसे प्रत्यक्ष और सबसे आवश्यक काम यही है कि तुम अधिक उन्नत देशों से कृषि और उद्योग-धंधों की कलाओं का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करो और उस लाभदायक ज्ञान को भारतवर्ष के घर-घर में बिखेर दो।

स्वामी राम का अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव है—धर्म का आचरण। वे कहते हैं—

तुम्हारे वर्तमान गार्हस्थ्य, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य ही आज तुम्हारा वैदिक कर्मकाण्ड है। जो काम तुम अँधेरे में दूसरों से छिपाकर करने की चेष्टा करते हो, वे तो अँधेरे के काम और त्याज्य हैं। काम चाहे घर-गृहस्थी का हो, चाहे सामाजिक और राजनैतिक, जब तक उसमें आत्मविश्वास का आधार न होगा, तब तक तुम आगे नहीं बढ़ सकते। 'कारलायल' कहता है कि आत्मविश्वास ही सर्वाधिक प्राणदा है। प्रत्येक जाति का इतिहास उसके अन्तरंग विश्वास के ही अनुसार निर्मित, विकसित और लाभदायक होता है। जब तक तुम अपने हृदय में आत्मविश्वास की ज्योति नहीं जगाते, ज्ञान की प्रज्वलित मशाल हाथ में लेकर आगे नहीं बढ़ते, तब तक तुमसे कोई भी करनेयोग्य काम सम्पन्न नहीं हो सकता। तुम उन्नति की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ये जो हर प्रकार के आदेश और संकेत रात-दिन तुम्हारे कानों में ठूँसे जाते हैं, तुम्हारे वास्तविक जीवन के लिए वाह्य ढाँचा मात्र है। आत्मा के बिना वाह्य ढाँचा कैसे खड़ा रह सकता है। पहले आत्मा को पहचानो, जो सच्चिदानन्द रूप है। सभी सफल गतिविधियों के मूल में जीवित आत्मविश्वास और प्रज्वलित ज्ञान आधार रूप से काम करता है। जो खुल्लमखुल्ला अपने आप को भौतिकवादी, स्याद्वादी, प्रत्यक्षवादी, अनीश्वरवादी, अज्ञेयवादी आदि कहा करते हैं,

यदि ध्यान से देखा जाय तो उनकी सफलता का रहस्य उनके हृदय में धर्म की सजीव भावना ही होती है, जिसका स्वयं उन्हें कोई पता नहीं होता। कभी-कभी यह देखा जाता है कि ऐसे लोग प्रायः धर्मात्मा कहे जानेवाले आचार्यों से भी अधिक धर्म का आचरण करते हैं।

स्वामी राम ने कहीं-कहीं भारतीय महिलाओं के विषय में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं—

अमेरिका और इंग्लैंड में ऐसी धारणा है कि भारत में स्त्रियों का आदर-सत्कार नहीं होता, पति पत्नी के साथ समुचित प्रेम नहीं करता। किन्तु यह सचमुच गलत धारणा है। क्योंकि भारत में वास्तव में अन्य पाश्चात्य देशों की अपेक्षा स्त्रियों के प्रति पुरुषों में अधिक सम्मान और अधिक प्रेम देखा जाता है। पाश्चात्य देशों में सर्वसाधारण के समक्ष पत्नी के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया जाता है, चुम्बन लेते हैं, लाड़-प्यार जनाते हैं। परन्तु घर पहुँचते ही स्थिति बदल जाती है। इसके विरुद्ध भारत में लोगों के सामने पति पत्नी का आदर-सत्कार बहुत ही कम या नहीं के बराबर करता है, परंतु हृदय के हृदय में वह उसे अत्यंत प्यार करता है।

भारतीय स्त्री का हृदय बहुत ही कोमल होता है। प्रत्येक भारत-रमणी अपना यह ईश्वरदत्त कर्त्तव्य समझती है कि वह भूखों को भोजन दे और उन दीन-हीनों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, जो उसके घर के सामने से निकलते हैं। यदि कोई साधु किसी महिला के घर से होकर निकले और वह उसे खाने के लिए कुछ भी अर्पण न कर सके तो ऐसे समय उसके दिल पर क्या गुजरती है यह राम ही जानता है!

पाश्चात्य महिला-समाज और भारतीय स्त्रियों में एक अन्तर है। वह यह कि वे पुरुषों के समान शिक्षिता नहीं हैं। पर क्या पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियाँ उतनी ही शिक्षिता हैं जितने कि पुरुष। भारत में दोनों—पुरुष और स्त्रियाँ अपेक्षाकृत कम शिक्षा-प्राप्त हैं।

परन्तु यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है तो उसे स्त्री-शिक्षा का

प्रचार अत्यन्त विस्तार के साथ करना ही होगा। भाई, फिर तुम्हारे ही हाथों इस शुभ काम का श्रीगणेश क्यों न हो ! बस, इस बात पर तुल जाओ कि तुम्हारे देश में कोई स्त्री, कोई गरीब अपढ़, निरक्षर न रह जाय। क्या तुम्हें अपने पड़ोस की भंगिन को पढ़ाने-लिखाने में झिझक और संकोच का अनुभव होता है ? यदि ऐसा है, तो सचमुच तुम्हारी सभ्यता और संस्कृति पर धिक्कार ! गरीब और अपढ़ लोगों को अपनी मातृवत् सहानुभूति से अपनाओ और पढ़ाने-लिखाने में प्रेम का अनुभव करो। तब देखो, तुम्हें कैसा स्वर्गीय आनन्द मिलता है !

तुम्हारी शारीरिक शक्ति जो आज लापरवाही के साथ निकृष्ट कामों में व्यय हो जाती है, या बैठे-बैठे आलस्य में क्षीण होती रहती है, उसे स्त्री-समाज को ऊपर उठाने में, अज्ञानग्रस्त स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करने में लगाओ। इसके द्वारा तुम स्वयं उन्नत होगे और तुम्हारा राष्ट्र भी गौरव पायेगा। अमेरिका और इंग्लैंड का साधारण जनसमूह भी हमारे विश्वविद्यालयों के अण्डरग्रेजुएटों से अधिक दक्ष देखा जाता है। क्यों ? उनकी शिक्षा के मुख्य साधन हैं, वहाँ के सस्ते और उपयोगी दैनिक समाचार-पत्र। वे सभी प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान का प्रसार उत्तमता से करते रहते हैं। हमारे यहाँ भी ऐसे उपयोगी सामयिक पत्रों का प्रचार होना चाहिए। निस्संदेह भारतीय प्रेस की दशा को सुधारना शिक्षा-प्रचार का एक सबसे सीधा और सबसे प्रबल साधन है। इन पत्रों में हमें लोगों के लिए विज्ञान की सभी शाखाओं के, जैसे भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनोविज्ञान आदि के सिद्धांतों को ऐसे मनोरंजक और सरल ढंग से लिखना चाहिए, जिससे स्त्रियाँ भी उन्हें समझ सकें। इन पत्रों की भाषा भी अपने-अपने स्थान के अनुकूल हो। राम इनके लिए हिन्दी अक्षरों की सिफारिश करता है, क्योंकि यह बहुत ही शीघ्र भारत की राष्ट्र-भाषा हुआ चाहती है। बोलो—तुम यह करोगे !

साधारणतः भारतीय साधुओं के विषय में स्वामी राम की धारणा बहुत अच्छी नहीं थी। उनके अनुसार :

भारतवर्ष के साधु अपने ढंग का एक निराला समाज बनाते हैं, जो इस देश की विशेषता है। जैसे बँधे हुए पानी के धरातल पर हरी काई की चादर फैल जाती है, उसी प्रकार ये सम्पूर्ण भारतवर्ष पर छाये हुए हैं और आज इनकी संख्या ५२ लाख तक कूती जाती है। उनमें से कुछ तो, निस्संदेह, सुन्दर कमलपुष्प के समान हैं, सरोवर का गौरव बढ़ाने वाले। किन्तु उनका अधिकांश बहुमत अस्वास्थ्यकर काई जैसा ही है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पानी जरा बहने लगे। जहाँ जनता में ठीक दिशा में हलचल हुई, वहाँ इस अनावश्यक काई को भी हटते देर नहीं लगेगी। साधु एक प्रकार से भारतीय इतिहास की कुछ अन्धकारमय शताब्दियों के स्वाभाविक परिणाम हैं। किन्तु आज देश में सुधार की एक लहर-सी बह चली है, जहाँ वह गृहस्थों की भावनाओं और अभिरुचियों में अन्तर ला रही है, वहाँ साधु भी उससे अछूते नहीं बचे हैं। इसीलिए अब ऐसे साधुओं का जन्म हो रहा है, जो राष्ट्रीय वृक्ष को आकाश-बेल की भाँति चूसने के स्थान में अपने आपको, अपने मन और शरीर को राष्ट्र-वृक्ष के लिए नरम खाद के रूप में परिणत करने को आतुर दिखायी देते हैं। यह शुभ लक्षण है।

भोजन का प्रश्न मनुष्य के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। स्वामी राम ने उस ओर भी ध्यान दिया था। वे कहते हैं—

छुआछूत की समस्या के कारण ऊपरी तौर से भोजन के प्रश्न ने हिन्दुओं में ऐसा अनुचित विस्तार पकड़ लिया है कि बहुतों ने दिल्लगी के रूप में हमारे धर्म का नाम ही 'चौका धर्म' रख छोड़ा है। किन्तु इतनी सारी चर्चा होने पर भी यह दुख की बात है कि हमने इस प्रश्न पर सही रूप से विचारा ही नहीं किया—एक शब्द

में, इस दिशा में हमारी शक्ति का घोर अपव्यय हुआ है। सच तो यह है कि हमने वैज्ञानिक ढंग से कभी विचार ही नहीं कि हम क्या खायें और कैसे खायें। 'जैसा तुम खाओगे, वैसा ही तुम्हारा विचार और आचार होगा।' जो वस्तु मशीन में डाली ही न गयी हो, वह मशीन से बाहर कैसे निकल सकती है ? जो मनुष्य पुट्ठों और मस्तिष्क के लिए उपयोगी आहार कभी लेते ही नहीं, उनसे शारीरिक और मानसिक काम की आशा एकदम मूर्खता है। साग-भाजी, अनाज और फलों में से आसानी से उचित मात्रा में हम ऐसी वस्तुयें चुन सकते हैं जिनसे शारीरिक और मानसिक शक्ति सुरक्षित रखने योग्य यथेष्ठ नाइट्रेट और फॉसफेट मिल सकें। क्या यह खेद की बात नहीं कि हम घी को इतना महत्व देते हैं जिसमें मस्तिष्क या पुट्ठों को पुष्ट करने का काई अंशविशेष नहीं है और जौ के अनाज को तुच्छ समझते हैं, जो विद्यार्थियों के लिए अति उत्तम आहार है। मिर्च, मसाले और नाना प्रकार की औषधियाँ हमारे शरीर-तंत्र को गड़बड़ करके हमारे स्वाभाविक स्वाद को बदल देती हैं। उनके द्वारा हम सभी प्रकार की कमजोरी और रोगों के शिकार होकर मृत्यु तक जा पहुँचते हैं। मक्खन, चीनी और स्टार्च जैसे कारवोनेट जो केवल फेफड़ों में ईंधन का काम करते हैं, हमारे भोजन में आवश्यकता से अधिक महत्व पाये हुए हैं, जब कि वे पुट्ठों और मस्तिष्क के लिए विशेष उपयोगी नहीं। फलस्वरूप हम आलस्य, तन्द्रा और थकावट से कभी छुटकारा नहीं पा सकते। क्या ही अच्छा हो कि छुआछूत के स्थान में ज्ञान (वैज्ञानिक अनुसन्धान) हमारे भोजन के प्रश्न का पथ प्रदर्शन करे।

बार-बार स्वामी राम ने हिन्दुओं से अपनी सामाजिक बुराइयों को दूर करने की मर्मस्पर्शी अपील की है। वे कहते हैं—

ऐ धर्मभीरु भारतवासियो, अपने शास्त्रों का ठीक-ठीक अनुगमन

करो। देश का आपद् धर्म आज तुमसे आग्रह करता है कि जाति-पाँति की कड़ी जंजीरों को ढीला कर दो और जातिगत कटु भावनाओं को राष्ट्रीय भ्रातृ-भाव से दबा दो। क्या तुम नहीं देखते कि जिस भारत ने किसी समय संसार के सभी भगोड़ों और दुस्साहसी आगुन्तकों को अपना द्वार पूर्णतः उन्मुक्त रखा, जिसके आधार पर बहुत सी जातियाँ और देश पनपते रहे, वही आज अपनी सन्तान को भरपेट भोजन देने में असमर्थ है। प्रत्येक मनुष्य को अपना सही स्तर प्राप्त करने के लिए एकसमान स्वतंत्रता होना चाहिए। शिर तुम्हारा चाहे जितना ऊँचा रहे, किन्तु पैर सब के एक समतल पर ही रहना चाहिए। कभी किसी के कंधे या गर्दन पर पैर रखने की इच्छा न करो, चाहे वह कमजोर हो या स्वयं इसके लिए सहमत हो।

× × ×

ऐ सुधार की इच्छा रखनेवाले नवयुवको। भारत के प्राचीन धर्म और रीति-रिवाजों की निन्दा मत करो। इस प्रकार फूट का एक नया बीज बोने से राष्ट्र में एकता लाना सम्भव न होगा। भारत के लौकिक अधः पतन के लिए उसका धर्म, और अध्यात्मवाद दोषी नहीं ठहराया जा सकता, यह उपवन तो इसलिए लुट गया कि उसके चारों ओर कँटीली चुभनेवाली बाड़ी का अभाव था। बाड़ी बेशक लगा दो, पर सुधार और उन्नति के नाम पर उपवन के मध्य में स्थित गुलाब के सुन्दर पौधों और फलदार वृक्षों को उखाड़ने की मूर्खता न करो। ओ चिरभिलषित झाड़ियो और काँटो, तुम्हीं इस उपवन के रक्षक हो, भारत को तुम्हारी अत्यन्त आवश्यकता है। और यह काँटे और झाड़ियाँ हैं क्या—दुनिया का व्यावहारिक ज्ञान। अपने धर्म के मूल तत्वों को स्थिर रखते हुए देश-काल के अनुसार अपने लौकिक व्यवहार में परिवर्तन कर लेना।

× × ×

राम जब शूद्रों के काम, शारीरिक श्रम के गौरव का गुणगान करता है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि रजोगुण और सतोगुण से तमोगुण श्रेष्ठ है। राम का अभिप्राय केवल इतना है कि हमने तमोगुण की काफी निन्दा की है और उससे घृणा और उसका विरोध करने की क्रिया द्वारा ही हमने उसे भयंकर रूप से अपने भीतर बैठा लिया है। हमें आज तमोगुण का सद् उपयोग करना सीखना चाहिए, जिससे वह भी हमारे लिए गौरवशाली हो।

उपवन भला कैसे फले-फूलेगा, यदि हम गंदी खाद का प्रयोग न करेंगे और उसे बाहर फेंक देंगे।

तमोगुण तो वह कोयला है, जिसके बिना न अग्नि और न वाष्प (रजोगुण) पैदा हो सकता है और न प्रकाश (सतोगुण) ही।

यह आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार मानी हुई बात है कि तमोगुण के व्यापक आधार के अनुपात में ही रजोगुण रूपी अग्नि एवं सतोगुण रूपी प्रकाश उत्पन्न होता है। इसीलिए यह देखा गया है कि किसी देश में नैतिक और बौद्धिक विकास चाहे जैसी उन्नत अवस्था में हो किन्तु जब तक उसके आधार में तमोगुण यानी शारीरिक श्रम का शक्तिशाली और पर्याप्त संचय नहीं होता, तब तक किसी भी आन्दोलन के साफल्य के लिए उदात्त शौर्य की भावना और चरित्र की दृढ़ता उद्भूत नहीं होती।

यही कारण है कि हमारे यहाँ देवों के देव, महादेव तमोगुण के अधिष्ठाता के रूप में चित्रित किये गये हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी राम ने हिन्दू-समाज की जिन बातों की आलोचना की है, उनमें और आज की स्थिति में कुछ-न-कुछ अन्तर आ गया है। पर उनका यह संदेश कि श्रुति में शाश्वत् है तथा स्मृति देशकाल के अनुसार बदलना चाहिए—सर्वथा माननीय और ग्रहणीय है।

समाजवाद

स्वामी राम की सामाजिक विचारधारा के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए उनके समाजवाद विषयक विचारों को जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। समाजवाद पर उनके विचार उनके एक व्याख्यान 'वेदान्त और समाजवाद' में सम्मिलित हैं। उस पर उनका एक छोटा सा नोट भी पाया गया है। उसमें वे कहते हैं—

सम्पत्ति का बटवारा बिल्कुल कृत्रिम है, उसमें जीवन का कोई लक्षण नहीं। मनुष्य के विकास-क्रम में न उसका कोई अंतरंग स्थान है और न उसके लिए वह स्वाभाविक ही है।

सम्पत्ति का यह विभाजन व्यक्तित्व के संघर्षशील विकास-पथ में एक भयंकर वाधा है और न उससे समान प्रवृत्ति वालों का मेल-मिलाप ही हो पाता है। इसलिए इस अस्वाभाविक क्रिया को छोड़ ही देना होगा। राजनीतिक क्षेत्र में जैसे राजाओं के निरंकुश शासन ने पहले सीमित राज्यसत्ता के लिए स्थान खाली किया और तदुपरान्त गणतंत्र, जनतंत्र आदि का विकास हुआ। उसी प्रकार सम्पत्ति विभाजन की प्रथा भी जाने वाली चीज है। यह बात तो नहीं कि समाजवाद से सारे संघर्षों का अन्त हो जायगा, प्रत्युत संघर्ष तो प्रत्येक दिशा में और भी तीव्रतर हो उठेगा, पर समाजवाद के द्वारा संघर्ष में भी स्वाभाविकता और स्पष्टता आयगी।

स्वामी राम समाजवाद को व्यक्तिवाद का नाम देना अधिक पसन्द करते थे। उनके अनुसार :

समाजवाद के शब्द से समाज के शासन के विचार को प्रमुखता मिलती है, जबकि सत्य का यथार्थ स्वरूप यह है कि सारी दुनिया और अखिल ब्रह्माण्ड के सामने, नहीं, उससे ऊपर व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार किया जाय, जहाँ न कोई झंझट हो, न कोई उलझन और न कोई चिन्ता। यह वह तथ्य है जिसे राम व्यक्तिवाद कहता है, यदि लोग उसे समाजवाद कहें तो भले ही कहें।

स्वामी राम राजनीति के विद्यार्थी नहीं थे। उन्होंने तो अपने आप को पूर्णतः अध्यात्मविद्या के अध्ययन में खपा दिया था और प्रत्येक लौकिक प्रश्न पर भी अपने उसी आध्यात्मिक अद्वैतवाद के दृष्टिविन्दु से विचार करते थे। उन्होंने देखा कि समाजवाद पूँजीवाद के नाश को अपना लक्ष बना रहा है और अपरिग्रह, पूर्ण अपरिग्रह उनकी धर्मसाधना में भी पहली शर्त है। बस, समाजवाद और वेदान्त इस बात पर सहमत हो गये। यद्यपि वेदान्त केवल सम्पत्ति-त्याग तक ही सीमित नहीं रहता और उससे आगे जाकर सर्वस्व त्याग तक पहुँचता है, फिर भी राम ने समाजवाद को आशीर्वाद दिया। वे कहते हैं—

हम देखते हैं कि यथाकथित समाजवाद का लक्ष केवल वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को आमूल हटा देना है। और वह इतनी दूरी तक वेदान्त के लक्ष से मिलता-जुलता है। क्योंकि वेदान्त भी तुम्हें सभी प्रकार की सम्पत्ति-भावना से नंगा करता है। वह कहता है, सम्पत्ति की भावना, संग्रह की भावना, व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना दूर फेंक दो। यह वेदान्त है और वह समाजवाद है। दोनों का लक्ष एक है।

वेदान्त समानता का उपदेश करता है और यही सच्चे समाजवाद का ध्येय होना चाहिए। उसमें किसी भी प्रकार की वाह्य सम्पत्ति, अधिकार के प्रति कोई आदर, सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। वह इन बातों को तिलांजलि देना चाहता है। निस्संदेह ऐसा करना बड़ा कठिन, दुस्साध्य और भयंकर मालूम होता है। पर याद रखिये, इस

पृथ्वीतल पर सौर्य मण्डल में सुख और आनन्द हो नहीं सकता, कदापि हो नहीं सकता जब तक मनुष्य सम्पत्ति भावना, अधिकार भावना, लालसा और आसक्तियों को एकदम छोड़ नहीं देता। समाजवाद मनुष्य से इतना त्याग करने के लिए कहता है, 'क्यों' के लिए वह चुप है पर वेदान्त इस त्याग के लिए समुचित कारण उपस्थित करता है। जिसे हम समाजवाद कहते हैं, उसने अभी तक चीजों के उपरी स्तर का अध्ययन किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि मनुष्य जाति को समानता, भ्रातृता और प्रेम के साथ रहना चाहिए। वेदान्त इस सारी समस्या पर भीतरी और तात्विक दृष्टि से विचार करता है। वेदान्त के अनुसार किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का संग्रह अपनी आत्मा, अन्तरात्मा के विरुद्ध घोरतम अपराध है। वेदान्त की दृष्टि में मनुष्य को केवल एक अधिकार है, वह है देना, न कि लेना। यदि तुम्हारे पास देने के लिए कुछ नहीं है तो अपने शरीर को ही कीड़े-मकोड़ों को खाने के लिए दे डालो। जो तुम बचाकर रखते हो, वही बुरी बात है, उसके कारण कोई तुम्हें धनवान नहीं कह सकता। जितना अधिक तुम देते हो उतने ही अधिक तुम धनवान हो। प्रत्येक मनुष्य को काम करना है, किसी वस्तु को जुटाने के लिए नहीं, पर हर एक वस्तु को दे डालने के लिए। संसार की सबसे बड़ी भूल तो यह हुई कि उसने पाने को सुख की भावना का कारण ठहराया। वेदान्त तुमसे यह तथ्य स्वीकार कराना चाहता है कि सुखमात्र देने में हैं, माँगने और चिरौरी करने में नहीं। ज्योंही तुम अपने आप को माँगने के कांक्षाभाव में उतारते हो त्योंही तुम सिकुड़ कर अपने को छोटा बना लेते हो, इतना ही नहीं, अपना रहा-सहा सुख भी बाहर ढकेल देते हो। चाहे जहाँ रहो, रहो सदा दाता की स्थिति में, कभी भिखारी मत बनो। इस प्रकार तुम्हारा काम सार्वभौमिक काम होगा, उसमें क्षुद्र व्यक्तित्व की गंध न आयेगी।

भारत के कुछ वेदान्तनिष्ठ साधु आज भी हिमालय पर इस प्रकार का समाजवादी जीवन बिताते हैं और न जाने कितने महात्मा प्राग् ऐतिहासिक काल से ऐसा जीवन बिताते रहे हैं। वे कड़ा परिश्रम करते हैं, वे दूसरों पर भार रूप नहीं होते और न वे आराम और आरायश ही चाहते हैं। यह तो उन्हीं के परिश्रमों का फल है कि भारत में ऐसा उदात्त साहित्य प्रकट हुआ है, इन्हीं लोगों में हमें भारत के बड़े से बड़े कवि, नाटककार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, वैयाकरण, गणितज्ञ, ज्योतिषी, रसायनज्ञ, और चिकित्सक आदि मिलते हैं, किन्तु क्या कभी इन लोगों ने पैसे को भी हाथ लगाया? ये तो वे महापुरुष हैं, जिन्होंने कठोरतम जीवन व्यतीत किया है। इससे उस बात की शंका भी निर्मूल हो जाती है, जो प्रायः समाजवाद के सर थोपी जाती है कि समाजवादी व्यवस्था में लोग कायर, आलसी और परावलम्बी हो जायँगे। सचमुच काम तो वही अच्छा कर सकता है, जो अपने को पूर्ण स्वतंत्र अनुभव करता हो।

किन्तु पाश्चात्य समाजवाद स्वामी राम के वेदान्तिक समाजवाद से भिन्न है—यह बात किसी प्रकार भुलायी नहीं जा सकती। एक स्वेच्छा-त्याग का समर्थक है और दूसरे में बलपूर्वक त्याग कराया जाता है। एक में हम ज्यों-ज्यों आत्म-साधना के मार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों संसार के नाशवान पदार्थों की स्पृहा अपने आप छूटती जाती है और दूसरे में धनवानों के प्रति घृणा जगायी जाती है और उन्हें अपनी सम्पत्ति छोड़ने के लिए वाध्य किया जाता है। लक्ष में एक सीमा तक समानता होने पर उनके साधने में कहाँ—कितना अन्तर है—इसकी व्याख्या में स्वामी राम गये नहीं—ऐसा मालूम होता है।

अतः यह निश्चय से कहा जा सकता है कि जिस समाजवाद का आज प्रचलन हो रहा है, उसे इस रूप में कभी राम ने अभिनन्दनीय नहीं माना। हाँ, समाजवाद की अन्तिम सम्भावनाओं के विषय में पूर्ण सच्चाई के साथ आगे बढ़ने में वे झिझके हों, सो बात नहीं। हर एक बात पर

उन्होंने वेदान्त की दृष्टि से ही विचार किया है। हमारा उक्त कथन उनके उन विचारों से पुष्ट होता है, जो उन्होंने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में प्रकट किये हैं। वे कहते हैं—

वेदान्त के अनुसार और समाजवाद के अनुसार भी तुमको किसी प्रकार की सम्पत्ति जैसे घर, रुपया-पैसा यहाँ तक स्त्री, बालकलत्र पर भी कोई अधिकार नहीं रखना चाहिए।

संसार के सभ्य समाज के माथे पर यह एक कलंक का सब से बड़ा टीका है कि उसने स्त्री को भी एक व्यापार की वस्तु मान रखा है, जैसे घर, भूमि, वृक्ष आदि। एक शब्द में सभ्य समाज में स्त्री को एक जड़ पदार्थ जैसा स्थान दिया गया है। क्योंकि जहाँ पुरुष अपने क्रिया-कलापों में परम स्वतंत्र है, वहाँ बात-बात में स्त्री के हाथ-पैर बँधे हैं। वह आज एक पुरुष की सम्पत्ति होती है और कल दूसरे की सम्पत्ति हो जाती है। वेदान्त के अनुसार और समाजवाद के अनुसार भी यह एक बड़ी विचित्र परिस्थिति है। स्त्री को तो पुरुष के समान ही स्वतंत्रता का अनुभव करना चाहिए। वह उतनी ही स्वतंत्र है जितना पुरुष। अब जब पुरुष कोई सम्पत्ति नहीं रख सकता, तब स्त्री को भी कोई सम्पत्ति नहीं रखना चाहिए। पुरुष पत्नी को सम्पत्ति के रूप में नहीं रख सकता, तो स्त्री को भी पति को सम्पत्ति के रूप में नहीं रखना चाहिए।

यहाँ समाजवाद के विरुद्ध एक घोरतम आपत्ति उठायी जाती है, यदि समाजवाद स्त्री और पुरुष को पूर्ण स्वतंत्रता देता है तो समाज पशुओं और व्यभिचारियों का समाज हो जायगा। राम कहता है, सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से स्त्री-पुरुष के लिए यह कोई अमंगलकारक स्थिति नहीं। गाय-भैंस जैसे पशु तो इन्द्रिय भोग बिलास में बहुत ही युक्तिसंगत और ऋतुगामी होते हैं। उनमें वासना और लालसा नहीं देखी जाती। यदि मनुष्य भी उसी ढंग से व्यवहार करने लगें,

तो सभ्य समाज का कामवासना विषयक सारा उद्वेग और प्रबल चांचल्य ही सदा के लिए समाप्त हो जाय।

समाजवाद पर भाषण करते समय स्वामी राम के सामने सदा एक ऐसे संसार की कल्पना रहती थी, जहाँ प्रत्येक मनुष्य व्यावहारिक वेदान्त के साधक रूप में विचरेगा, जहाँ वह शरीर और शरीर के संबन्धों की चिन्ताओं से निर्लिप्त होकर आत्मा और ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए उद्योगशील होगा। ऐसे संसार में न व्यक्तियों के पास सम्पत्ति होगी और न उन्हें शिक्षकों और डाक्टरों आदि की भी आवश्यकता होगी। पर क्या आज प्रचलित समाजवाद स्वामी राम के पथ पर अग्रसर हो रहा है? स्वामी राम कहते हैं—

हमें लोगों को केवल इतना समझाना भर है कि संसार के समस्त दुखों और रोगों की एकमात्र औषधि है, सम्पत्ति पर अधिकार जमाने के भाव का पूर्ण परित्याग। एक बार जहाँ मनुष्य-जाति के बहुमत के हृदय में यह विचार घर कर गया, समाजवाद वनवह्नि की भाँति सारे संसार पर छा जायगा। उनके रोगों का बस, एक ही उपचार है वेदान्तिक समाजवाद। एक बार जहाँ लोगों ने इस वेदान्तिक समाजवाद को अपनाया, वहाँ पृथ्वी पर स्वर्ग आने में कितनी देर लगती है! आज समाजवाद के प्रति छिन्न-भिन्न अपूर्ण दृष्टि के कारण और वातावरण के ऊपरी सीमित अध्ययन के फलस्वरूप जो यत्र-तत्र अनेक आपत्तियाँ उठायी जाती हैं वह वेदान्त के ज्ञान से न जाने कहाँ लुप्त हो जायँगी। इस समाजवाद में न होंगे राजा और न बादशाह, न होंगे राष्ट्र-पति और न होंगे प्रधान मंत्री, न होंगे पण्डित और पुरोहित और न होगी सेना और सिपाही! उसमें विश्वविद्यालयों की भी आवश्यकता न होगी, हर एक व्यक्ति स्वयं अपना विश्वविद्यालय होगा। हाँ, पुस्तकालय बेशक रह सकेंगे, जहाँ प्रत्येक को पठन-पाठन और अध्ययन की सुविधा रहेगी। प्रोफेसर भी न होंगे, केवल छोटे बच्चों

के शिक्षण को छोड़कर। वहाँ डाक्टर भी अपेक्षित न होंगे। क्योंकि वेदान्त के उपदेशों के अनुसार जब तुम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने लगोगे, तब रुग्ण पड़ ही नहीं सकते, फिर डाक्टरों का क्या होगा ! लोग जो चाहें, सो करेंगे, सारी सृष्टि में चाहे जहाँ विचरेंगे, उन्हें कहीं अपने भाई से न कोई शंका होगी और न कोई भय—जैसा आजकल देखा जाता है। उनका काम होगा केवल भला करना, वे अपना सारा समय सचमुच लाभदायक अध्ययन में लगायेंगे। वे दार्शनिक और आध्यात्मिक खोजों में संलग्न रहेंगे। वे आत्मा के अनुभव में, ब्रह्म के साक्षात्कार में संलग्न और तल्लीन देखे जायँगे। ॐ

वेदान्तिक समाजवाद की उपर्युक्त साधना को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा था—

भारत की स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारत में संगठन और सहयोग के द्वारा ही इस वेदान्तिक समाजवाद की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

राम थे सन्त, आत्मनिष्ठ संत। उन्होंने जिसे भी छुआ, उसे अपने अध्यात्मवाद से रंगकर दिव्य बना दिया। रासायनिक की भाँति लोहा भी उनके हाथों सोना हो गया। उन्होंने वेदान्त के द्वारा समाजवाद की एक नूतन ही व्याख्या उपस्थित की। जिस वेदान्तिक समाजवाद का आह्वान उन्होंने किया है, वह सदा से हिन्दू धर्म का एक आवश्यक अंग है। पर उसे व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। वह त्याग का पथ है और आज हम संग्रह के पीछे पड़कर ठोकरें खा रहे हैं। वेदान्तिक समाजवाद के द्वारा, स्वामी राम कहते हैं, हमें चतुर्दिक सिद्धि मिलेगी, संघर्ष की कटुता दूर होगी, संग्रह का मोह हटेगा, हम क्रियाशील होंगे स्वतंत्रता और आनन्द तो हमारा स्वरूप ही बन जायगा। उनके वचनों में संशय का स्थान नहीं है। उन्होंने अपने प्रत्येक सिद्धान्त को स्वयं अपने जीवन में उतारा है और स्वयं अपने को बनाकर दिखाया है राम।

समाजवाद की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए स्वामी राम कहते हैं कि समाजवाद, वास्तविक समाजवाद भारतवर्ष के लिए कोई नयी चीज नहीं है। वरन् कहा यह जा सकता है कि नूतन विचारधारा के नाम से जो विचार आजकल पाश्चात्य देशों में फैल रहे हैं, किसी न किसी रूप में उनका आदि उद्गम-स्थल भारतवर्ष ही है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार भी किया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान मेक्समूलर कहता है—यदि इतने उत्कृष्ट दार्शनिक जैसे सोपनहायर के निर्णय को अनुमोदन की आवश्यकता हो तो मैं अपने उस दीर्घकालीन जीवन के आधार पर जो अधिकांश संसार भर के दर्शन शास्त्रों और धर्मों के अध्ययन में ही बीता है, दृढ़ता से कह सकता हूँ कि यदि किसी दर्शन या धर्म का अर्थ उस जीवन-साधना से है जो मनुष्य को जीवन में और मृत्यु में भी एक समान आनन्द-मग्न रख सके, तो उसके लिए वेदान्त से श्रेष्ठ और कोई दर्शन नहीं है। इसी प्रकार समाजवाद के विचार के लिए भी इंग्लैण्ड का एडवर्ड कारपेण्टर भारतवर्ष का ऋणी हुआ है। यहाँ राम का यह आशय नहीं था कि पाश्चात्य देशों ने अपने सभी विचार भारतवर्ष से उधार लिये हैं। हाँ, 'इस सौर्यमण्डल में कहीं कोई नई चीज नहीं ैदा होती'—यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, उसका बीज किसी न किसी रूप में पहले अवश्य विद्यमान रहता है। यदि पाश्चात्य देश भारतवर्ष के विचारों को अब पुनः अपने ढंग से प्राप्त कर रहे हैं—तो यह एक अभिनन्दनीय बात है। यहाँ कहना केवल यह है कि आज भी भारत की विचारधारा में ऐसे एसे रत्न भरे पड़े हैं, जिनके प्रकाश से संसार एकदम चमत्कृत हो उठेगा। यहाँ योगवाशिष्ठ नाम का एक ऐसा अनुपम ग्रन्थ है, जो एकदम स्पष्ट, अर्थपूर्ण, युक्तिसंगत और सचमुच काव्यधारा में लिखा गया है—उसकी सरस शैली ऐसी नियमबद्ध है जैसे हम गणित की पुस्तक का पारायण कर रहे हैं। वे कहते हैं—

इस संसार में तुम्हें अपना काम उल्लास के साथ करना चाहिए। राम को यहाँ एक बाग की याद आती है, जहाँ कुछ कुली सड़क पर मिट्टी कूटने का काम कर रहे थे। उनका दिल भारी था, बेमन से हथौड़े चला रहे थे। वहीं पर उद्यान के बीचोंबीच हरी-हरी दूब पर कुछ राजकुमार टेनिस खेल रहे थे। उनका काम खुशी का काम था, यद्यपि अपनी खुशी में वे उन कुलियों की अपेक्षा अधिक परिश्रम के कारण पसीना-पसीना हो रहे थे। बस, इस संसार के प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण सदा उन खिलाड़ी राजकुमारों जैसा ही होना चाहिए। तुम्हें काम और परिश्रम तो छोड़ना नहीं है, परन्तु उस काम और उस परिश्रम के प्रति अपना भाव परिवर्तन कर लेना है। आनन्द रूप काम तो तुम सदा करते ही रहोगे। अपनी आत्मा में स्थित होने से तुम्हें एक अपूर्व आनन्द मिलेगा। जब तुम अपने दिव्य स्वरूप की उच्चतम सुन्दर शिखरों पर जमकर बैठ जाओगे, तो दिव्य संगीत और एक से एक अनुपम कार्य अपने आप तुम्हारे द्वारा निर्गत और सम्पन्न होने लगेंगे। जो काम विवश होकर किया जाता है, वह कभी प्रभावोत्पादक नहीं होता। जैसे सूर्य से प्रकाश फैलता है, जैसे गुलाब के पुष्प से सुगंध निकलती है, जैसे हिमाच्छादित शिखरों से शीतलता का विस्तार होता है, वैसे यदि तुम आत्मा की एकता और दिव्यता का अनुभव करते हुए काम में लगोगे तो शान्ति और आह्लाद, प्रेम और प्रकाश स्वतः तुम्हारे भीतर से फूट-फूट कर निकलेगा, क्योंकि तुम हो तो प्रकाशों के परम प्रकाश !

हम रूखे टुकड़े खायेंगे, भारत पर वारे जायँगे।
हम सूखे चने चबायेंगे, भारत की बात बनायेंगे।
हम दर दर धक्के खायेंगे, आनन्द की झलक दिखायेंगे।
सब रिश्ते - नाते तोड़ेंगे, दिल एक आत्म संग जोड़ेंगे।

ॐ ॐ ॐ

आवश्यकता है !

किनकी ? सुधारकों की !
दूसरों को सुधारनेवालों की नहीं,
किन्तु अपने आपको सुधारनेवालों की !
विश्वविद्यालय के उपाधिधारियों की नहीं,
किन्तु क्षुद्र अहम्भाव के विजेताओं की।
आयु हो—आनन्द, उमंग भरा तारुण्य
वेतन मिलेगा--स्वयं ईश्वरीय पद

तुरंत निवेदन भेजिये ! किसके पास ?

विश्व नियन्ता अपनी ही आत्मा के पास,
किन्तु उसमें दासोऽहम् भरी दीनता
न हो, हो स्वयं अपना निर्णय,
निश्चय और अधिकार !

—स्वामी राम

मूल्य—३१ नये पैसे